व्यावहारिक जीवन में नाम, रूप, स्थापना और प्रतीक

—विश्वनाथ पाठक

प्रायः जीवन में प्रयोजन-सिद्धि के लिये बहुत सी काल्पनिक मान्यतायें भी अपरिहार्य बन जाती हैं। नाम, रूप, स्थापना और प्रतीक ऐसी ही विभूतियाँ हैं। यथार्थ न होने पर भी इन असत् मान्यताओं और मूल्यों को अस्वीकार करना कठिन ही नहीं, असंभव भी है। ज्ञानी, मूढ, असाधु, साधु, शिक्षित और अशिक्षित—कोई भी हो, यदि वह समाज में रह कर साँसें लेता है तो इन विभूतियों की अनुल्लंघनीय लक्ष्मण-रेखा के उस पार नहीं जा सकता।

प्रत्येक द्रव्य का एक नाम अवश्य होता है। यह नाम न तो वस्तुनिष्ठ है और न वक्तृनिष्ठ। यदि वह द्रव्य (नामी) में रहता तो वहाँ उसकी उपलब्धि अवश्य होती। उच्चारण के पूर्व और पश्चात् अविद्यमान रहने के कारण उसे वस्तुनिष्ठ भी नहीं कह सकते हैं। ध्वनिभिन्न द्रव्य का ध्वनि से तादात्म्य-स्थापन ही नामकरण है। यह तादात्म्य नितान्त कल्पित है, क्योंकि नाम एक वर्णात्मक ध्वनि होने के कारण स्थूल द्रव्य से स्वरूपतः भिन्न होता है। नामी (द्रव्य) का दर्शन होता है और नाम का श्रवण। आँख मूँद लेने पर नामी अदृश्य हो जाता है, किन्तु नाम तब भी सुनाई देता है। ईश्वर, जीव आदि सूक्ष्म द्रव्य इन्द्रियातीत, नित्य और अनुत्पाद्य हैं, परन्तु उनके नाम इन्द्रियग्राह्य, अनित्य और प्रयत्नोत्पाद्य हैं। नाम न तो नामी में संयुक्त है और न समवेत। अतः कमल नाम में जिन क, म और ल ध्वनियों का सन्निपात सुनाई देता है, उनकी उपलब्धि कमल द्रव्य के किसी भी भाग में नहीं होती है। नाम और नामी में आर्थिक-अन्विति ध्रुव नहीं है, अतः अधिकांश नाम झूठे होते हैं। आशा देवी का जीवन निराशा में ही बीतता है, गिरिजापति अविवाहित ही मरता है, आलोक के घर में अँधेरा दिखाई देता है, विद्यासागर के मूर्खता की चर्चा घर-घर होती है और कुबेर सड़कों पर भीख माँगता फिरता है। नामी के रहने पर नाम का भी रहना अनिवार्य नहीं है। वनों और गाँवों में असंख्य कीट, पतंग, सरीसृप, तृण, गुल्म, विहंग, वीरुध् और वनस्पतियाँ पड़ी हैं, जिनका अभी तक नामकरण ही नहीं हुआ है। नामी (द्रव्य) के अभाव में नाम का भी अभाव हो जाना आवश्यक नहीं है। महात्मा गाँधी अब नहीं हैं किन्तु उनका नाम कोई कभी भी ले सकता है। इस प्रकार नाम और नामी में न तो अन्वय है और न व्यतिरेक ही। बालक अनाम ही उत्पन्न होता है। एक बार नाम रख कर उसे पुराने वस्त्र के समान बदला भी जा सकता है। शब्द शासन में प्रतिपादित नाम और नामी (अर्थ या द्रव्य) का ज्ञाप्य-ज्ञापक रूप सम्बन्ध भी व्यभिचार दोष से मुक्त नहीं है। काम्बु शब्द संस्कृत में शंख और तमिल में छड़ी का ज्ञापक है और वही एक अशिक्षित मूर्ख की दृष्टि में बिल्कुल निरर्थक है। हिन्दी में फुलकी का अर्थ रोटी है और बँगला में चिनगारी। किसी अन्य प्रदेश में चले जाइये तो उसका कुछ भी अर्थ नहीं समझा जायेगा। हिन्दी और संस्कृत में जो शरीर शब्द देह का वाचक है, वही अरबी में दुष्ट का अर्थ देता है। अन्य स्थानों पर वही निरर्थक भी हो सकता है। अंग्रेजी के बहुत से शब्द हिन्दी में दूसरा अर्थ देते हैं। इस प्रकार एक ही आकृति वाले शब्दों की ज्ञापकता में आकाश और पाताल का अन्तर है। इतना ही नहीं, कभी-कभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञापक के रहने पर भी ज्ञाप्य का ज्ञान नहीं होता है। भारतीय शब्द ईरान और चीन में तब तक कोई अर्थ नहीं प्रकाशित कर सकते, जब तक उनका अर्थों से आरोपित और सांकेतिक सम्बन्ध न बताया जाये। एक ही भाषा-क्षेत्र में दस-पंद्रह कोस की दूरी पर बहुत से शब्दों के अर्थ नहीं समझे जाते हैं। नाम और नामी के सम्बन्ध की अव्याप्ति उस समय और स्पष्ट हो जाती है, जब हम किसी शब्द (नाम) का प्रयोग ऐसे द्रव्य (नाम) के लिये करते हैं, जिसके लिए उसे मान्यता नहीं मिली है। घर में जब किसी नौकर से कोई बड़ी भूल हो जाती है तब न तो उसके चार पैर निकल आते हैं और न पीछे पूँछ ही उग जाती है, फिर भी बाहर 'सत्यं वद धर्मं चर' का ढोल पीटने वाला महोपदेशक भी उसे गदहा कहने में नहीं चूकता है। गाँव का अध्यापक छोटे बच्चों को 'क माने कौआ और अ माने आम' पढ़ाता है। जरा उससे पूछिये कि ये अर्थ उसने किस शब्दकोश में देखें हैं। रेखागणित में रेखाओं, कोणों और त्रिभुजों के नामों में कितनी सत्यता है, इसे यदि जानना चाहें तो घर की दीवारों के कोनों और किसी भी त्रिभुजाकार वस्तु को देख लें। अबोध बालक पूर्वसिद्ध द्रव्यों को प्रत्यक्ष देखता है। उस समय उसे शब्दों और द्रव्यों के सांकेतिक सम्बन्ध अज्ञात रहते हैं। धीरे-धीरे वह परिवार और समाज के साहचर्य में रह कर तत्-तत् द्रव्यों का तत्-तत् शब्दों (ध्वनियों) से कृत्रिम सम्बन्ध समझता है और वैसे ही शब्दों का उच्चारण करना सीखता है, तब कहीं जाकर वाक्शक्ति स्फुरित होती है। यदि वही बालक समाज से पृथक् कर दिया जाये तो गूँगा हो जायेगा। यदि शब्द और अर्थ में यथार्थ सम्बन्ध होता तो जैसे अनुपहतेन्द्रिय मनुष्य के लिए दर्शन की क्रिया स्वाभाविक होती है, वैसे ही भाषण भी स्वाभाविक होता है। बाल्यकाल के प्रयत्नों की स्मृतियाँ स्थिर नहीं रह पाती हैं, अतः मातृभाषा स्वाभाविक सी लगती है, परन्तु जब कोई विदेशी भाषा सोखनी पड़ती है तब पता चलता है कि यह कार्य कितना आयास-साध्य है। विभिन्न भाषाओं में एक ही नामी के भिन्न-भिन्न नाम हैं। यदि नाम की आकृति निश्चित होती और उसका नामी से ध्रुव सम्बन्ध होता तो सभी देशों और कालों में प्रत्येक द्रव्य का एक ही नाम रहता। परन्तु एक ही द्रव्य के अनेक देशों और कालों में अनेक नाम पाये जाते हैं अतः सभी कल्पित हैं और सभी मिथ्या हैं। उपनिषदों ने ईश्वर को अशब्द कहा था, परन्तु उस अव्यपदेश्य एवं परात्पर शक्ति के भी असंख्य नाम गढ़ लिये गये हैं। कोई अल्लाह कहता है, कोई गॉड और कोई ईश्वर। ये झूठे नाम ही संसार के नाना धार्मिक सम्प्रदायों में प्रचलित उपासना के मूलाधार हैं। यदि हम यथार्थ के नशे में आकर सभी अयथार्थ मान्यताओं को बिलकुल ठुकरा दें तो भजन, कीर्तन, जप, स्तुतियाँ और आराधनायें सभी बन्द हो जायेंगी।

परमार्थ निर्विकल्पक भी हो सकता है, परन्तु व्यवहार सर्वथा सविकल्पक है। हम उसके लिये कल्पित नाम ही नहीं गढ़ते हैं, कल्पित रूप भी रचते रहते हैं। यथार्थ-दृष्टि से द्रव्य सत् है। सत्ता ही उसका लक्षण है, परन्तु व्यवहार में एक ही द्रव्य में अनेक कल्पित नाम और रूप प्रकट हो जाते हैं। मृत्तिका से घट, शराव (सकोरा), कुण्ड, चषक, हाथी, घोड़े तथा अन्य खिलौनों की आकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। सुवर्ण कुण्डल, कटक, केयूर, किंकिणी, किरीट, दीनार और निष्क के रूपों में परिणति प्राप्त करता है। तन्तुओं के संयोग से पट की आकृति का प्रादुर्भाव होता है। ये सभी आकृतियाँ और नाम मानव-निर्मित हैं, द्रव्य में प्रारम्भ से नहीं रहते हैं। इस प्रकार मनुष्य प्रकृति से उपादान के रूप में प्राप्त द्रव्यों को आवश्यकतानुसार विविध रूपों में परिष्कृत और परिणत करता रहता है, किन्तु उन रूपों की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, क्योंकि ध्वंस के पश्चात् सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकृतियाँ विलीन हो जाती हैं, द्रव्य ही शेष रहता है। यद्यपि मानवकृत नामों और रूपों की पारमार्थिक सत्ता नहीं है, तथापि उनके बिना काम नहीं चल सकता है। तन्तु माँगने पर पट नहीं मिल सकता, यद्यपि तन्तु ही पट है, मृत्तिका माँगने पर घट नहीं मिल सकता, यद्यपि मृत्तिका ही घट है और सुवर्ण माँगने पर आप कुण्डल नहीं पा सकते, यद्यपि सुवर्ण ही कुण्डल है। परन्तु सत्ता द्रव्य की ही होती है मिथ्या आकृतियों और नामों की नहीं, इसे मूर्ख भी जानता है। दीवाली में चीनी के हाथी, घोड़े और ऊँट बिकते हैं, परन्तु बच्चे भी उन्हें हाथी, घोड़े और ऊँट समझ कर नहीं खाते हैं, चीनी समझकर खाते हैं।

द्रव्य की सत्ता पारमार्थिक होने पर भी हमारा प्राप्य द्रव्य ही नहीं है, मिथ्या नाम और रूप भी हैं, क्योंकि उनमें व्यवहार-सम्पादन की विलक्षण क्षमता होती है। कंकण चाहने वाला सुवर्ण पाकर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता है, और न घट चाहने वाला मृत्तिका से, क्योंकि द्रव्य पर्याय (विकार, रूप) के बिना मूलरूप में अनेक स्थलों पर कार्य-सम्पादन में अक्षय हो जाता है। हम मृत्तिका-पिण्ड में नहीं, घट में ही जल भर सकते हैं, तन्तु से नहीं पट से ही तन ढँकना संभव है। इस प्रकार व्यवहार-क्षेत्र में रूप की अपरिहार्यता निर्विवाद है।

मानव द्रव्य के अभाव में भी रूपमात्र से सन्तुष्ट हो जाता है। प्रवासी प्रणयी को व्यापक वियोग के व्यथाकुल क्षणों में प्रेयसी का मनोरम चित्र ही धीरज बँधाता है। काठ का घोड़ा घास नहीं खाता है, सवार को लेकर दौड़ भी नहीं सकता है, फिर भी कोई व्यक्ति ऐसा नहीं दिखाई देता है जिसने उसे मिथ्या समझ कर फेंक दिया हो। द्रव्य के अभाव में रूप का प्रेम विलक्षण है। बुद्ध और महावीर अब नहीं हैं, परन्तु उनकी पाषाण-प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। उन प्रस्तर-प्रतिमाओं में बुद्ध और महावीर कहाँ हैं ? उन्हें तो निर्वाण और कैवल्य प्राप्त हो गया है। बुद्ध और महावीर तो सावयव थे, निरवयव ईश्वर की भी प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं। ताश के पत्ते पर बादशाह के पास फौज नहीं रहती है, बीवी बच्चे नहीं देती और न गुलाम हुक्म ही बजाता है, फिर भी वे बादशाह बीवी और गुलाम हैं। जिसने मानव को पशुत्व से ऊपर उठाकर सभ्य बनाया है, जो आज तक विश्व के कोने-कोने में अखण्ड ज्ञानालोक प्रज्ज्वलित करती आई है, वह भाषा भी कोरे रूप के व्यामोह से मुक्त नहीं रह सकी। संसार की समस्त समुन्नत भाषालिपियाँ एक स्वर से जीवन में रूप की अनिवार्यता का उद्घोष कर रही हैं। रूपहीन ध्वनियाँ ही अक्षर या वर्ण हैं, परन्तु विभिन्न लिपियों में उन निराकार वर्णों की भी पृथक्-पृथक् कल्पित आकृतियाँ गढ़ ली गई हैं। विभिन्न भाषा-लिपियों में एक ही ध्वनि के पृथक्-पृथक् आकार मानव की कल्पनाप्रियता का परिचय देते हैं :—

देव नागरी	फारसी	रोमन	तमिल
ट	ٹ	T	ட
प	پ	P	ப

ये तो कुछ उदाहरण हैं। विश्व में बहुत सी भाषाएँ हैं और उनकी अनेक लिपियाँ हैं। ध्वनियो की आकृति के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद सबके मिथ्यात्व का प्रमाण है। परन्तु इन्हीं मिथ्या एवं कल्पित वर्णाकृतियों में वेद, त्रिपिटक, जैनागम, बाइबिल, कुरान प्रभृति प्रमाण ग्रन्थ लिखे गये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। संख्या का भी कोई आकार नहीं है, वह केवल बुद्धि का विषय है। बुद्धिवादी गणितज्ञों ने विभिन्न लिपियों में उसे भी साकार बना कर छोड़ा है :—

देवनागरी	६	७	८	९
रोमन	6	7	8	9
फारसी	۶	۷	۸	۹

इन अमूर्त संख्याओं के साथ-साथ बहुत से अमूर्त गुणों और क्रियाओं की भी आकृतियाँ बनाई गई हैं—

संयोग	+	×
विभाग	−	÷
साम्य	=	

किसी सत् वस्तु का आकार बना लेना तो समझ में आता है, वास्तववादी गणितज्ञों ने असत् एवं अवस्तु रूप अभाव को भी वर्तुलाकार शून्य (०) की आकृति प्रदान की है। अर्थशास्त्र की एक पुस्तक में यह आकृति दी गई है :—

बताइये, अर्थशास्त्रियों के अतिरिक्त आयात और निर्यात का यह आकार क्या कभी किसी और को भी दिखाई देता है ? भौगोलिक मानचित्रों में देशों, मैदानों, पर्वतों, मरुस्थलों, समुद्रों, नदियों और रेलवे लाइनों को रेखाओं और वर्णों के माध्यम से पढ़ाया जाता है। वस्तुतः वहाँ उनमें से एक भी वस्तु नहीं रहती है। विज्ञान में भी रूपहीन गैसों और ऊर्जाओं को स्थूल चित्रों के द्वारा समझाने की परम्परा है।

इस प्रकार मानव में कृत्रिम रूपनिर्माण की प्रवृत्ति नैसर्गिक है। वह अपनी रचना में केवल मूर्त वस्तुओं के रूपों का अनुकरण ही नहीं करता, अपितु अवस्तु और अमूर्त सत्ताओं की भी काल्पनिक आकृतियाँ गढ़ लेता है। यही नहीं, अपनी इच्छा-शक्ति से किसी भी नामरूपमय द्रव्य का उससे भिन्न दूसरे द्रव्य से अभेद स्थापित करना भी मानव का स्वभावज गुण है। इस प्रक्रिया को जैनशास्त्रों में स्थापना कहते हैं। इसके लिये रूप साम्य अनिवार्य नहीं है, क्योंकि अमूर्त द्रव्यों की भी स्थापना मूर्त द्रव्यों के रूप में की जाती है। प्रायः अयथार्थ ज्ञान भ्रामक होता है, परन्तु स्थापना अयथार्थ होने पर भी भ्रम से भिन्न है। भ्रम में रज्जु की प्रतीति नहीं होती है, सर्प की ही प्रतीति होती है, परन्तु स्थापना में रज्जु की ही प्रतीति होती है, स्थापक उसे आग्रह पूर्वक सर्प मान लेता है। जैनों ने तत्त्वनिरूपण में स्थापना को आवश्यक निक्षेप माना है। स्थापन-प्रवृत्ति का उद्गम मनुष्य में शैशव से ही होता है। बहुधा छोटे बच्चे खेल में अपने आगे छोटी-छोटी पत्तियाँ रख लेते हैं और आपस में कहते हैं—'यह हमारा घोड़ा है, यह हमारा हाथी है और यह हमारा ऊँट है'। बालिकाओं में गुड़ियों और गुड्डों के विवाह का खेल प्रसिद्ध है। कभी-कभी एक बालक कूद कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने साथी के कन्धे पर चढ़ जाता है और उसे हाथों या कोड़ों से मार-मार कहता है—'चल रे घोड़े, चल'। छोटा बालक खूब जानता है कि यह तो हमारा साथी है, घोड़ा नहीं है, फिर भी उस पर घोड़े का आरोप करके क्षण भर पुलकित हो जाता है। कबड्डी के खेल में आप ने देखा होगा, एक दल का खिलाड़ी जब अन्य दल के किसी खिलाड़ी को छू कर भाग आता है तब छुआ हुआ व्यक्ति मृत घोषित कर दिया जाता है। यद्यपि वह साँसें लेता है, चलता-फिरता है और बात-चीत भी करता रहता है, तथापि उस जीवित को व्यावहारिक रूप में मृतक मान लिया जाता है। यही बाल-प्रवृत्ति विकसित होकर जीवन के विविध क्षेत्रों में हमारी धार्मिक, शैक्षिक, साहित्यिक और राजनैतिक गतिविधियों को पूर्णतया प्रभावित करती रहती है। नदी, पर्वत, वृक्ष, नगर आदि में पवित्रता की स्थापना से तीर्थों का उदय होता है। मक्का, मदीना, येरुस्सलम, बोधिगया, पावा धाम, अयोध्या, मथुरा आदि हमारे पवित्र स्थान हैं। वस्तुतः ये स्थान भी अन्य स्थानों के समान नितान्त भौतिक हैं; इन्हें आध्यात्मिक पवित्रता स्थापना से मिली है। मुर्दे को लोग छूना भी पसन्द नहीं करते हैं। जो स्वयं मर गया है, वह दूसरे की मुराद क्या पूरी करेगा ? परन्तु पीरों की हड्डियों पर बनी मजारों पर दुआएँ माँगने के लिए मेले लगते हैं, बड़ी-बड़ी मनौतियाँ मानी जाती हैं। 'संग असवद' पत्थर ही तो है, प्रत्येक हजयात्री उसे क्यों चूमता है ? यह सब स्थापना के कारण होता है। स्थापना में विषयी और विषय—दोनों अमूर्त भी हो सकते हैं। निरर्थक ध्वनियों पर विविध अर्थों के आरोप इसके उदाहरण हैं। सीटी की ध्वनि अमूर्त है, उसके द्वारा अनेक अर्थ संकेतित होते हैं। कभी वह खेल के आरम्भ का अर्थ देती है तो कभी खेल के समापन का; और कभी दस्युओं का नायक आसन्न संकट की सूचना सीटी बजा कर देता है तो कभी ताली बजा कर। ये सभी सांकेतिक अर्थ समुदाय विशेष में पहले से स्थापित और आरोपित रहते हैं।

बीज गणित में जो धन नहीं है, उसे भी धन मान लेने की निम्नलिखित पद्धति प्रसिद्ध है—

"मान लिया मोहन के पास अ रुपये थे"।

यद्यपि अ किसी भी दशा में रुपया नहीं हो सकता है, वह केवल एक अक्षर है, परन्तु इस मिथ्या कल्पना के आधार पर बड़े-बड़े कठिन प्रश्न हल किये जाते हैं। भूगोल में एक बहुत बड़ा सफेद झूठ चलता है। आपने मानचित्रों के नीचे लिखा हुआ निम्नलिखित ढंग का पैमाना अवश्य देखा होगा—

१ मिली मीटर = १०० किलो मीटर

एक मिली मीटर एक सौ किलोमीटर के बराबर कभी नहीं हो सकता है, इसे एक मूर्ख भी जानता है तो क्या भूगोल के विद्वान् प्राध्यापक नहीं जानते होंगे ? मैं समझता हूँ, वे असत्य से सत्य की ओर चल कर 'असतो मा सद् गमय' की वैदिक प्रार्थना को चरितार्थ करते हैं। सौ रुपये का नोट वस्तुतः काग़ज का छोटा सा टुकड़ा ही है, जिसका मूल्य कौड़ी के बराबर भी नहीं है, परन्तु स्थापना की शक्ति से उसी काग़ज के टुकड़े के बदले सौ रुपये के सामान मिल जाते हैं। स्थापना आहार्य बुद्धि का परिणाम है। मिथ्या होने पर भी उसकी उपेक्षा संभव नहीं है। दिशा को ही ले लीजिये, वह अपेक्षा-बुद्धि से उत्पन्न होती है। उसके अस्तित्व के लिये कम से कम दो वस्तुओं की सत्ता अनिवार्य होती है। हम जिसे पूर्व कहते हैं, उसे ही दूसरा पश्चिम कहता है, एक तीसरा उसी को उत्तर कहता है तो चौथा उसी को दक्षिण मानता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार दिशा की कोई निश्चित सीमा नहीं है। वह वस्तु सापेक्ष है, स्वतन्त्र नहीं; फिर भी इस अनिश्चित एवं असत् बुद्धि विकल्प की स्वीकृति के बिना व्यवहार-शृंखला की कई कड़ियाँ टूट जाती हैं। पारमार्थिक सत्ता की अन्ध श्रद्धा से विवेक-हीन होकर व्यावहारिक सत्ता की उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिये। स्थापना असत् होने पर भी व्यवहार में सत्य से कम महत्त्व नहीं रखती है। जैन शास्त्रों में सत्य के दस भेद उल्लिखित हैं, जिनमें नाम, रूप और स्थापना को भी व्यावहारिक रूप से सत्य स्वीकार किया गया है[१]।

जो वस्तु जिस रूप में नहीं है, किसी प्रयोजन से उसे उस रूप में मान लेना स्थापना है। है। इसके मूल में समष्टि और व्यष्टि—दोनों की इच्छायें संभव हैं। किसी द्रव्य की जिस भिन्न द्रव्य पर स्थापना की जाती है, वह उस द्रव्य का प्रतीक बन जाता है और उसमें व्यवहार-सम्पादन की अपूर्व शक्ति उत्पन्न हो जाती है। मंगल का कोई आकार नहीं है, फिर भी रसाल पल्लव, दधि, दूर्वा हरिद्रा, पुष्प, अक्षत, सिन्दूर, नैवेद्य, गोरोचन, कस्तूरी आदि मंगल प्रतीक हैं, क्योंकि उनमें मंगल स्थापना है। श्रद्धेय के गले में पुष्पमाला डाल देने पर उसे क्या मिल जाता है? उसकी अपेक्षा पेट भर लड्डू खिला देने पर अधिक तृप्ति संभव है। परन्तु नहीं, पुष्प हमारी श्रद्धा, भक्ति, पूजा, निष्ठा और प्रतिष्ठा का कोमल प्रतीक है। भले ही पुष्प-माला पहनने से पेट न भरे, परन्तु हृदय कृतज्ञता से अवश्य अभिभूत हो उठता है। पुष्पों में भी मंगल-स्थापना सर्वत्र नहीं है। कोंहड़ा, लौकी, बैगन और तरोई प्रभृति वनस्पतियों के पुष्पों को मांगल्य नहीं माना गया है। स्वस्तिक चिह्न और चतुष्क में कौन सा मंगल मूर्तिमान् होकर बैठा है परन्तु प्रत्येक शुभ कार्य में इनकी रचना की जाती है। काले झंडे का अर्थ किसी का अपमान नहीं है, लाल झंडी का अर्थ ट्रेन का रुकना नहीं है और हरी झंडी का अर्थ ट्रेन का चलना नहीं है, परन्तु काला झंडा दिखाने वालों पर लाठी चार्ज होता है, लाल झंडी दिखाने पर ट्रेन रुक जाती है और हरी झंडी दिखाने पर चलने लगती है। हम राष्ट्रध्वज को झुककर प्रणाम करते हैं। वह एक साधारण वस्त्र होने पर भी राष्ट्रीय ऐक्य और प्रतिष्ठा का प्रतीक है। प्राचीन काल में पंचायतों के पंचों के पास कौन सी सेना रहती थी? एक साधारण और निर्बल मनुष्य भी दण्डाधिकारी का प्रतीक बनकर जो भी दण्ड दे देता था, वही सबको स्वीकार्य होता था। रामलीला और नाटक में न तो सचमुच सीताहरण होता है और न राम विलाप ही करते हैं। हरण भी कल्पित है और विलाप भी कल्पित है, दर्शक इस तथ्य को जानता भी है, परन्तु उसकी आँखें सजल हो उठती हैं। यह है प्रतीक की महिमा। साहित्य में अन्योक्ति और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों के आधार प्रतीक ही हैं। ऋग्वेद का 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते' इत्यादि मन्त्र प्रतीकों की अपरिहार्यता का प्रमाण है। सुपर्ण पक्षी का अभिधान है और वृक्ष पेड़ का। मन्त्र में ये शब्द जीव, परमात्मा और जगत् के प्रत्यायक हैं। सन्त कबीर ने "साँच बराबर तप नही, झूठ बराबर पाप' कह कर सत्य को सर्वश्रेष्ठ तप और झूठ को सर्वश्रेष्ठ पाप घोषित किया था, परन्तु व्यवहार में असत् प्रतीकों की परिधि को वे भी नहीं लाँघ पाये—

१. दशविधः खलु सत्य सद्भावः—नाम-रूप-स्थापना-प्रतीत्य-संवृति-संयोजना-जनपद-देश-भाव-समयसत्यभेदेन।
षट्खण्डागम—(धवला) सन्तपरूवणानुयोगद्वार, १।१।२, पृ० ११७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगी समुन्दर आगि, नदियाँ जरि कोइला भईं।
कहै कबीरा जागि, मछली रूखें चढ़ि गईं॥

इस सोरठे में यथार्थ दृष्टि से बिल्कुल मिथ्या और असंभव बात कही गई है। समुद्र में आग कभी नहीं लग सकती है। यदि लग भी जाये तो उसी को जलायेगी। यहाँ तो आग लगी है समुद्र में और जलकर कोयला हो रही हैं नदियाँ। क्या नदियाँ कोई काष्ठ हैं जो जलकर कोयला हो जायेंगी; भाप भले हो जाये। इस पर भी आश्चर्य देखिये, जिस विचित्र आग ने समुद्र में लगकर नदियों को भी जला डाला, वही अपने ईंधन वृक्षों को बिल्कुल नहीं जला सकीं, तभी तो बची हुई मछलियां उन पर चढ़ गईं। प्रतीकों की शक्ति को स्वीकार किये बिना यह सोरठा उन्मत्त प्रलाप बन जायेगा।

जैसे मूल के कट जाने पर वृक्षों की हरियाली चली जाती है वैसे ही स्थापना समाप्त हो जाने पर प्रतीकों की शक्ति भी समाप्त हो जाती है। गाँव का एक साधारण व्यक्ति जिस स्थापना की शक्ति से कुछ दिनों के लिये राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री के रूप में महत्त्व एवं ऐश्वर्य का प्रतीक बन जाता है, उसी के अभाव में 'पुनर्मूषको भव' की लोकोक्ति को चरितार्थ करने लगता है।

जीवन में कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ नाम, रूप, स्थापना और प्रतीक का अधिकार न हो। किसी क्षेत्र में वे प्रतिषिद्ध नहीं हैं। कहीं भी उनके विरोध का स्वर नहीं सुनाई देता है। केवल उपासना में पता नहीं क्यों कुछ लोग प्रतीक (प्रतिमा) का विरोध करते हैं। आश्चर्य है, कल्पित नाम स्वीकार करने में किसी को भी आपत्ति नही है. निराकार वर्णों, गुणों, क्रियाओं और संख्याओं की कल्पित आकृतियाँ गढ़ लेने पर कोई पाप नहीं लगता है, गणित और भूगोल में असत्य बातों को कहते जिह्वा कट कर नहीं गिर जाती, मूल्यहीन कागज के टुकड़े को बहुमूल्य मान लेने पर भी बुद्धि का दिवाला नहीं निकलता, केवल आराध्य की प्रतिमा बना लेने पर हम अपराधी हो जाते हैं।

●

—हो० त्रि० इण्टर कालेज, टाँडा, फैजाबाद
(उ० प्र०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org